जैन धर्म का प्राण : स्याद्वाद

□ डॉ० महावीरसिंह मुडिया
(सहायक प्रोफेसर, रसायनशास्त्र-विभाग, उदयपुर विश्वविद्यालय, उदयपुर)

स्याद्वाद भारतीय दर्शनों की संयोजक कड़ी और जैन दर्शन का हृदय है। इसके बीज आज से सहस्रों वर्ष पूर्व सम्भाषित जैन आगमों में उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य, स्यादस्ति, स्यान्नास्ति, द्रव्य, गुण, पर्याय, सप्त नय आदि विविध रूपों में बिखरे पड़े हैं। सिद्धसेन, समन्तभद्र आदि जैन दार्शनिकों ने सप्तभंगी आदि के रूप में तार्किक पद्धति से स्याद्वाद को एक व्यवस्थित रूप दिया। तदनन्तर अनेक आचार्यों ने इस पर अगाध वाङ्मय रचा जो आज भी उसके गौरव का परिचय देता है। विगत ढाई हजार वर्षों से स्याद्वाद दार्शनिक जगत् का एक सजीव पहलू रहा और आज भी है।

स्याद्वाद सिद्धान्त जैन तीर्थंकरों की मौलिक देन है, क्योंकि यह ज्ञान का एक अंग है, जो तीर्थंकरों के केवलज्ञान में स्वतः ही प्रतिबिम्बित होता है। स्याद्वाद सिद्धान्त के द्वारा मानसिक मतभेद समाप्त हो जाते हैं और वस्तु का यथार्थ स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। इसको पाकर मानव अन्तर्द्रष्टा बनता है। स्याद्वाद का प्रयोग जीवन व्यवहार में समन्वयपरक है। वह समता और शान्ति को सर्जता है। बुद्धि के वैषम्य को मिटाता है। स्याद्वाद सिद्धान्त की चमत्कारी शक्ति और सार्वभौम प्रभाव को हृदयंगम करके डॉ० हर्मन जकोबी नामक प्रसिद्ध जर्मन दार्शनिक ने कहा है—स्याद्वाद से सब सत्य विचारों का द्वार खुल जाता है। अमेरिका के दार्शनिक विद्वान् प्रो० आर्चि जे० बन्ह ने इस सिद्धान्त का अध्ययन कर निम्न प्रेरणा भरे शब्द कहे हैं—

"विश्व शान्ति की स्थापना के लिये जैनों को अहिंसा की अपेक्षा स्याद्वाद सिद्धान्त का अत्यधिक प्रचार करना उचित है।"

स्याद्वाद एक तर्क व्यूह के रूप में ग्रहीत नहीं हुआ, किन्तु सत्य के एक द्वार के रूप में ग्रहीत हुआ। आज स्याद्वाद जैन दर्शन का पर्याय बन गया है तथा जैन दर्शन का अर्थ स्याद्वाद के रूप में लिया जाता है। वास्तव में स्याद्वाद जैन दर्शन का प्राण है। जैन आचार्यों के सारे दार्शनिक चिन्तन का आधार स्याद्वाद है।

स्याद्वाद का स्वरूप एवं महत्त्व

'स्याद्' और 'वाद' दो शब्द मिलकर स्याद्वाद की संघटना हुई है। स्याद् कथंचित् का पर्यायवाची संस्कृत भाषा का एक अव्यय है। इसका अर्थ है—किसी प्रकार से, किसी अपेक्षा से। वस्तुतत्त्व निर्णय में जो वाद अपेक्षा की प्रधानता पर आधारित है, वह स्याद्वाद है। यह इसकी शाब्दिक व्युत्पत्ति है। किसी एक ही पक्ष को देखकर वस्तु के स्वरूप के सम्बन्ध में निर्णय करना एकान्त निर्णय है और इसलिये गलत है। स्याद्वाद के अनुसार किसी भी विषय का निर्णय करने से पहले, उसके हर पहलू की जाँच करना चाहिये। प्रत्येक वस्तु के अनन्त पक्ष, अनेक अन्त होते हैं। इतना ही नहीं प्रत्येक वस्तु में आपस में विरोधी अनन्त गुण-धर्मात्मक, अनेक प्रकार की विविधाएँ भरी हुई हैं। इस दृष्टि से जैन दार्शनिकों का कहना है कि जो वस्तु तत्त्व रूप है, वह अतत्त्वरूप भी है। जो वस्तु सत् है, वह असत् भी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। जो एक है, वह अनेक भी है। जो नित्य है, वह अनित्य भी है। इस प्रकार हर एक वस्तु परस्पर विरोधी गुण-धम से भरी हुई है।

स्याद्वाद के विषय में उसकी जटिलता के कारण ऐसे विवेचनों की बहुलता यत्र-तत्र दीख पड़ती है। इस जटिलता को भी आचार्यों ने कहीं-कहीं इतना सहज बना दिया है कि जिससे सर्वसाधारण भी स्याद्वाद को भली-भाँति समझ सकते हैं। जब आचार्यों के सामने यह प्रश्न आया कि एक ही वस्तु में उत्पत्ति, विनाश और ध्रुवता जैसे परस्पर-विरोधी धर्म कैसे ठहर सकते हैं? तो स्याद्वादी आचार्यों ने कहा—एक स्वर्णकार स्वर्ण-कलश तोड़कर स्वर्ण-मुकुट बना रहा है। उसके पास तीन ग्राहक आए। एक को स्वर्णघट चाहिए था, दूसरे को स्वर्णमुकुट और तीसरे को केवल स्वर्ण चाहिये था। स्वर्णकार की प्रवृत्ति को देखकर पहले को दुःख हुआ कि यह स्वर्णकलश को तोड़ रहा है। दूसरे को हर्ष हुआ कि यह मुकुट तैयार कर रहा है। तीसरा व्यक्ति मध्यस्थ भावना में रहा क्योंकि उसे तो केवल स्वर्ण से काम था। तात्पर्य यह हुआ कि एक ही वस्तु (स्वर्ण) में उसी समय एक विनाश देख रहा है, एक उत्पत्ति देख रहा है और एक ध्रुवता देख रहा है।

इसी प्रकार जब किसी व्यक्ति ने पूछ लिया कि आपका स्याद्वाद क्या है, तो आचार्यों ने कनिष्ठा व अनामिका सामने करते हुए पूछा—दोनों में बड़ी कौन-सी है? उत्तर मिला—अनामिका बड़ी है। कनिष्ठा को समेट कर और मध्यमा को फैलाकर पूछा—दोनों अंगुलियों में छोटी कौन-सी है? उत्तर मिला—अनामिका। आचार्यों ने कहा—यही हमारा स्याद्वाद है, जो तुम एक ही अंगुली को बड़ी भी कहते हो और छोटी भी। यह स्याद्वाद की सहजगम्यता है। इसी प्रकार जो सत् है, वही असत् कैसे हो सकता है? और यह एक विरोधाभास भी प्रतीत हो सकता है, किन्तु वास्तव में ऐसी बात नहीं है। जैन दार्शनिकों ने स्याद्वाद की दृष्टि से, अनेक भिन्न-भिन्न दृष्टिबिन्दुओं तथा विचारधाराओं का एक साथ विचार करने के बाद ही यह बात कही है। द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की चारों अपेक्षाओं, सातों नयों द्वारा की गई तुलना और सप्तभंगी से मिलान करने के पश्चात् ही जैन शास्त्रकारों ने यह विचित्र किन्तु सम्पूर्ण रूप से सत्य बात कही है। जैन तत्त्वज्ञानियों ने सर्वथा असंदिग्धता से भारपूर्वक कहा है कि एकान्त नित्य से अनित्य का या एकान्त अनित्य से नित्य का स्वतन्त्र उद्भव असम्भव है।

भगवतीसूत्र में प्रश्न किया गया है—भगवन्! परमाणु पुद्गल शाश्वत है या अशाश्वत? भगवान् महावीर कहते हैं—हे गौतम! द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा से परमाणु पुद्गल शाश्वत है—नित्य है और वर्णपर्यायों से लेकर स्पर्श-पर्यायों की अपेक्षा से अर्थात् पर्यायार्थिक नय दृष्टि से यह अशाश्वत, अनित्य, अस्थित है, क्षणिक है। इसका स्पष्ट अभिप्राय यह है कि वस्तु द्रव्य की अपेक्षा से नित्य है और पर्याय की अपेक्षा से अनित्य। भगवान् महावीर एक स्थान पर कहते हैं—'एगे आया'—आत्मा एक है। और अपने उपदेश में दूसरे स्थान पर कहते हैं—'अनेगे आया' अर्थात् आत्मा अनेक हैं। शाब्दिक दृष्टि से दोनों कथनों में विरोध दिखाई देता है, परन्तु सैद्धान्तिक दृष्टि से उनमें कोई विरोध नहीं है, केवल भेद है, अतः उन दोनों में सत्यता है। वस्तु में नित्यत्व-अनित्यत्व, एकत्व-अनेकत्व आदि अनेक धर्म हैं और उनको हम एक-एक अपेक्षा से समझ सकते हैं। इस अपेक्षादृष्टि को नय कहते हैं। नयवाद से जितने भी एकान्तवादी दर्शन होते हैं, उन सबका समावेश हो सकता है, क्योंकि वे वस्तु के स्वरूप को एक दृष्टि से देखते हैं। परन्तु वे अपनी दृष्टि को सत्य और दूसरों की दृष्टि को एकान्ततः मिथ्या बताते हैं, अतः वे स्वयं मिथ्या हो जाते हैं। उनमें परस्पर संघर्ष शुरू हो जाता है। जैसे द्रव्य की अपेक्षा से आत्मा के नित्यत्व को देखने वाला विचारक यह आग्रह रखता है कि आत्मा नित्य ही है, वह अनित्य नहीं है। नित्यवाद ही सही है। अनित्य-वाद का सिद्धान्त पूर्णतः गलत है। इस एकान्त आग्रह के कारण वह नय मिथ्यानय हो जाता है। उसमें सत्यांश होते हुए भी एकान्त का आग्रह, अन्य सत्यांशों का अस्वीकार और अपनी दृष्टि से व्यामोह का जो विकार है, वह उसे मिथ्या रूप में परिणत कर देता है। दार्शनिक क्षेत्र में फिर संघर्ष शुरू होता है और सभी दार्शनिक एवं विचारक अपने माने हुए सत्यांशों को पूर्णतः सत्य और दूसरे के अभिमत सत्यांशों को पूर्णतः असत्य सिद्ध करने के लिये वाक्युद्ध

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

करने लगते हैं। वस्तुत: वस्तु न एकान्त नित्य है और न एकान्त अनित्य। उसमें एकत्व भी है और अनेकत्व भी है। वस्तु अनन्त-अनेक धर्मों से युक्त है। इसलिये उसे एक स्वरूप या एक ही धर्म वे युक्त कहना सत्य का तिरस्कार करना है। भगवती सूत्र श० ९, उ० ६, सूत्र ३८७ में जीव नित्य है या अनित्य, इस विषय को स्पष्ट करते हुए भगवान महावीर जमालि को समझा रहे हैं—हे जमालि ! जीव शाश्वत है, नित्य है, ध्रुव है, अक्षय है, क्योंकि भूत, भविष्य, वर्तमान—तीनों कालों में ऐसा कोई क्षण नहीं, जिस समय जीव का अस्तित्व न रहा है।

हे जमालि ! जीव अशाश्वत है, क्योंकि यह नरक भव का त्याग कर तिर्यञ्च योनि में उत्पन्न होता है। तिर्यञ्च भव से निकलकर मनुष्य बनता है। मनुष्य से देवगति को प्राप्त करता है। इस प्रकार विभिन्न अवस्थाओं में परिवर्तित होने के कारण वह अनित्य है।

इसी प्रकार सोमिल के प्रश्नों का उत्तर देते हुए भगवान महावीर कहते हैं—हे सोमिल ! द्रव्य दृष्टि से मैं एक हूँ, ज्ञान और दर्शन की अपेक्षा से मैं एक नहीं दो हूँ। कभी नहीं बदलने वाले आत्मप्रदेशों की दृष्टि से मैं अक्षय हूँ, अव्यय हूँ, अवस्थित हूँ और परिवर्तनशील उपयोग की दृष्टि की अपेक्षा से मैं अनेक रूप हूँ। स्याद्वाद के अनुसार जीव सान्त भी है, और अनन्त भी है। द्रव्य-दृष्टि से जीव द्रव्य एक है अत: वह सान्त है। काल की अपेक्षा से जीव सदा-सर्वदा से है और सर्वदा रहेगा, इसलिये वह अनन्त है। भाव की अपेक्षा से जीव के अनन्त ज्ञान पर्याय हैं, अनन्त दर्शन पर्याय है, अनन्त चारित्र पर्याय हैं, अनन्त अगुरुलघु पर्याय हैं, इस कारण वह अनन्त है। इस प्रकार द्रव्य और क्षेत्र की अपेक्षा से जीव ससीम है, इसलिये वह सान्त है। काल और भाव की अपेक्षा से वह असीम है, अत: अनन्त है।

उपर्युक्त विवेचन से यह बात स्पष्ट है कि एक और अनेक, नित्य और अनित्य, सान्त और अनन्त धर्मों का स्याद्वाद के द्वारा भली-भाँति समन्वय होता है, तथा स्याद्वाद के द्वारा वस्तु के यथार्थ एवं सत्य स्वरूप को समझकर दार्शनिक संघर्ष समाप्त किये जा सकते हैं। एकान्त आग्रह सत्य पर अवलम्बित होने पर भी संघर्षों की जड़ है और वैमनस्य, राग-द्वेष, वैर एवं विरोध बढ़ाने वाला है। अत: पूर्ण सत्य को जानने, देखने एवं पूर्ण शान्ति को प्राप्त करने का सही मार्ग स्याद्वाद है।

आइन्सटीन का सापेक्षवाद और स्याद्वाद

सापेक्षवाद वैज्ञानिक जगत में बीसवीं सदी की एक महान देन है। इसके आविष्कर्त्ता सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक प्रो० अलबर्ट आइन्सटीन हैं, जो पाश्चात्य देशों में सर्वसम्मति से संसार के सबसे अधिक विलक्षण पुरुष माने गये हैं। सन् १९०५ में आइन्सटीन ने 'सीमित सापेक्षता' शीर्षक एक निबन्ध लिखा जो 'भौतिकशास्त्र का वर्ष पत्र' नामक जर्मन पत्रिका में प्रकाशित हुआ। इस निबन्ध ने विज्ञान की बहुत सी बद्धमूल धारणाओं पर प्रहार कर एक नया मानदण्ड स्थापित किया।

अस्ति, नास्ति की बात जैसे स्याद्वाद में पद-पद पर मिलती है, वैसे ही है और नहीं (अस्ति, नास्ति) की बात सापेक्षवाद में भी मिलती है। जिस पदार्थ के विषय में साधारणतया हम कहते हैं कि यह १५४ किलो का है। सापेक्ष-वाद कहता है कि यह है भी और नहीं भी। क्योंकि भूमध्य रेखा पर यह १५४ किलो है, पर दक्षिणी या उत्तरी ध्रुव पर १५५ किलो है। गति तथा स्थिति को लेकर भी यह बदलता रहता है। गति और स्थिति अपेक्षिक धर्म है। एक जहाज जो स्थिर है, वह पृथ्वी की अपेक्षा से ही स्थिर है, लेकिन पृथ्वी सूर्य की अपेक्षा से गति में है और जहाज भी इसके साथ गति में है। स्याद्वाद के अनुसार प्रत्येक ग्रह व प्रत्येक पदार्थ चर भी है और स्थिर भी है। स्याद्वादी कहते हैं—परमाणु नित्य भी है और अनित्य भी। संसार शाश्वत भी है और अशाश्वत भी है।

आकाश सर्वत्र व्याप्त है। धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय असंख्य योजन तक सहवर्ती है। द्रव्य-दृष्टि से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विश्व एक है, अभिन्न है और नित्य है। पर्याय-दृष्टि से विश्व अनेक है, भिन्न है और अनित्य है। निरपेक्ष रहकर दोनों दृष्टि का सत्य पूर्ण सत्य नहीं है। ये सापेक्ष रहकर ही पूर्ण सत्य की व्याख्या कर सकती हैं।

सापेक्षवाद के अधिष्ठाता प्रो० आइन्सटीन भी यही कहते हैं—

"We can only know the relative truth, the absolute truth is known only to the universal observer."

(हम केवल आपेक्षिक सत्य को ही जान सकते हैं, सम्पूर्ण सत्य सर्वज्ञ द्वारा ही ज्ञात है।) वास्तव में स्याद्वाद के तथ्य जितने दार्शनिक हैं, उतने ही वैज्ञानिक भी। स्याद्वाद केवल कल्पनाओं का पुलिन्दा नहीं किन्तु जीवन का व्यावहारिक मार्ग है। इसीलिये आचार्यों ने कहा है—उस जगतगुरु स्याद्वाद महासिद्धान्त को नमस्कार हो जिसके बिना लोक व्यवहार भी नहीं चल सकता। यह तो वस्तु तथ्य को पाने का एक यथार्थ मार्ग है।

स्याद्वाद का दार्शनिक स्वरूप एवं विशिष्टता

स्याद्वाद की सर्वोपरि विशेषता है कि वह किसी वस्तु के एक पक्ष को पकड़कर नहीं कहता है कि यह वस्तु एकान्ततः ऐसी ही है। वह तो 'ही' के स्थान पर 'भी' का प्रयोग करता है। 'ही' एकान्त है। 'भी' वैषम्य एवं संघर्ष के बीज का मूलतः उन्मूलन करके समता तथा सौहार्द के मधुर वातावरण का सृजन करती है।

जितने भी एकान्तवादी दर्शन हैं, वे सब वस्तु स्वरूप के सम्बन्ध में एक पक्ष को सर्वथा प्रधानता देकर ही किसी तथ्य का प्रतिपादन करते हैं। सांख्यदर्शन आत्मा को कूटस्थ (एकान्त) नित्य ही मानता है। उसका कहना है—आत्मा सर्वथा नित्य ही है। बौद्ध दर्शन का कहना है—आत्मा अनित्य ही है। आपस में दोनों का विरोध है। जैन दर्शन कहता है—यदि आत्मा एकान्त नित्य ही है तो उसमें नारक, देवता, पशु और मनुष्य के रूप में परिवर्तन क्यों होता है? कूटस्थ नित्य में तो किसी भी प्रकार का पर्याय परिवर्तन या हेर-फेर नहीं होना चाहिए। क्रोध, अहंकार, माया तथा लोभ के रूप में क्यों रूपान्तर होता है? अतः आत्मा नित्य ही है, यह कथन भ्रान्त है। यदि आत्मा सर्वथा अनित्य ही है, तो वह वस्तु नहीं है, जो पहले देखी गई है, परन्तु प्रत्यभिज्ञान तो अबाध रूप से होता है, अतः आत्मा सर्वथा अनित्य ही है—यह मान्यता भी त्रुटिपूर्ण है। निष्कर्ष निकला, द्रव्य अपेक्षा से आत्मा नित्य है और पर्याय की अपेक्षा से आत्मा अनित्य है।

प्रत्येक दार्शनिक, धार्मिक व सांसारिक समस्या का समाधान स्याद्वाद से किया जा सकता है। समानता को समानता एवं असमानता को असमानता मानने वाला व्यक्ति ही स्याद्वाद का उपासक हो सकता है। सब धर्मों में आचार-विषयक जैसे कुछ समानताएँ दृष्टिगोचर होती हैं उसी प्रकार असमानताएँ भी अनेक हैं। भक्ष्य, अभक्ष्य, पेय, अपेय, कृत्य, अकृत्य की सब समानताएँ समान ही हैं, यह विचार सर्वथा भ्रान्त है। एकान्त और अनेकान्त के जीव-अजीव तत्त्वों के सम्बन्धों में किये गये विवेचन-विश्लेषण में उत्तरी ध्रुव तथा दक्षिणी ध्रुव जैसा अन्तर होते हुए भी इनमें परस्पर कोई भेद नहीं। सब धर्मों और प्रवर्त्तकों में पूर्ण साम्य है, यह कहना स्याद्वाद नहीं मृषावाद है।

स्याद्वादी का सर्व-धर्म-समन्वय एक भिन्न कोटि का होता है। वह सत्य को सत्य और असत्य को असत्य के रूप में देखता है, मानता है। असत्य का पक्ष न करना और सत्य के प्रति सदा जागरूक रहना ही सच्ची मध्यस्थ-दृष्टि है। सत्य-असत्य में कोई विवेक न करना यह मध्यस्थदृष्टि नहीं, अज्ञानदृष्टि है। सत्य के प्रति अन्याय न होने पाए और असत्य को प्रश्रय न मिलने पाए, इस अपेक्षा से स्याद्वाद सिद्धान्त के मानने वाले व्यक्ति का मध्यस्थभाव एक अलग ही ढंग का होता है, जिसकी झाँकी निम्न श्लोक में देखी जा सकती है—

तत्रापि न द्वेष कार्यो, विषयवस्तु यत्नतो मृग्यः।
तस्यापि च सद्वचनं, सर्वं यत्प्रवचनादन्यत्॥ षोडशक, १६. १३.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दूसरे शास्त्रों के प्रति द्वेष करना, उचित नहीं है; परन्तु वे जो बात कहते हैं, उसकी यत्नपूर्वक शोध करना चाहिये और उसमें जो सत्य वचन है, वह द्वादशांगी रूप प्रवचन से अलग नहीं है।

स्याद्वाद का गाम्भीर्य और मध्यस्थ भाव दोनों उपर्युक्त श्लोक में मूर्त होते हैं। स्याद्वादी के लिये कोई भी वचन स्वयं न प्रमाणरूप है और न अप्रमाणरूप है। विषय के शोधन-परिशोधन से ही, उसके लिये वचन प्रमाण अथवा अप्रमाण बनता है। स्याद्वादी किसी भी दर्शन से द्वेष नहीं करता है। वह सम्पूर्ण नय-रूप दर्शनों को इस प्रकार वात्सल्य की दृष्टि से देखता है जैसे कोई पिता अपने पुत्रों को देखता है, क्योंकि स्याद्वादी की न्यूनाधिक वृद्धि नहीं हो हो सकती। वास्तव में सच्चा शास्त्रज्ञ कहे जाने का अधिकारी वही है, जो स्याद्वाद का अवलम्बन लेकर सम्पूर्ण दर्शनों में समान भाव रखता है।

धार्मिक सम्प्रदायों की असहिष्णुता

स्याद्वाद अहिंसा का एक अंग है। जैन दर्शन में अहिंसा सर्वोपरि है। यदि यह कहा जाए कि अहिंसा जैन दर्शन का पर्यायवाची नाम है तो भी अत्युक्ति न होगी। जहाँ जैन दर्शन मनुष्य अथवा प्राणधारी के जीवन की प्रत्येक क्रिया में हिंसा का आभास करता है और कहता है कि विश्व में किसी भी प्राणधारी की—पृथ्वी, अप्, तेज, वायु वनस्पति तथा त्रस जीवों की हिंसा से विरत रहना चाहिये, उसी जैन दर्शन के व्याख्याता आचार्यों ने यह भी प्रतिपादित किया—

जयं चरे, जयं चिट्ठे, जयं मासे, जयं सये।
जयं भुंजतो भासंतो, पावकम्मं न बंधई।

उपरोक्त गाथा में यत्नपूर्वक जीवन यापन में पापकर्म के बंधन न होने का प्रतिपादन किया है। जैन दर्शन में द्रव्यहिंसा की अपेक्षा भावहिंसा को भी अधिक बन्ध का कारण माना है। अर्थात् किसी प्राणी को ऐसा वचन न कहा जाए जिससे कि उसे दुःख पहुँचे। स्याद्वाद बौद्धिक अहिंसा है। वास्तव में धर्म के नाम पर होने वाले साम्प्रदायिक संघर्षों का मूल कारण एकान्तवाद का आग्रह है। "केवल मेरा धर्म, विश्वास और उपासना पद्धति ही एक मात्र सत्य है और दूसरे सब गलत हैं। मेरा धर्म ही ईश्वरीय धर्म है। ईश्वर मेरी पूजा से ही प्रसन्न होगा, तथा अन्य लोगों की उपासना पद्धति मिथ्या है। मेरे धर्मग्रन्थ ही प्रामाणिक और ज्ञान के भण्डार हैं, अन्य सब व्यर्थ हैं।" इन धारणाओं के कारण भयानक कलह हुए, लड़ाइयाँ लड़ी गईं और मानव जीवन कष्टप्रद एवं दुःखी बना।

"सब मनुष्य एक हैं"—यह सापेक्ष सिद्धान्त है। मनुष्य-मनुष्य के बीच प्रकृति और व्यवस्थाकृत अनेकताएँ भी हैं। एकता और अनेकता से परे जो द्वन्द्वातीत आत्मा की अनुभूति है, वह धर्म है। इस धार्मिक दृष्टिकोण से मानवीय एकता का अर्थ होगा—मनुष्य के बीच घृणा और संघर्ष की समाप्ति।

दार्शनिक जगत के लिये जैन दर्शन की यह देन सर्वथा अनुपम व अद्वितीय है। स्याद्वाद सिद्धान्त के द्वारा विविधता में एकता और एकता में विविधता का दर्शन कराकर जैन दर्शन ने विश्व को नवीन दृष्टि प्रदान की है। स्याद्वादी का समताभाव अन्तर् और बाह्य जगत में एक समान होता है। अतः वह एक सार्वभौम अहिंसाप्रधान समाजवाद का सृजन करने की क्षमता रखता है। चाहे दर्शनशास्त्र का विषय हो और चाहे लोक व्यवहार का स्याद्वाद सिद्धान्त सर्वत्र समन्वय और समता को सिरजता है। आज के संघर्ष के युग में स्याद्वादी ही वह सूझ-बूझ का मानव हो सकता है, जो सत्य और अहिंसा के बल पर समस्त प्राणियों में मेल-मिलाप करा सकता है।

भारतीय संस्कृति के विशेषज्ञ मनीषी डॉ० रामधारीसिंह दिनकर का अभिमत है कि स्याद्वाद का अनुसन्धान भारत की अहिंसा साधना का चरम उत्कर्ष है और सारा संसार इसे जितना शीघ्र अपनाएगा, विश्व में शान्ति उतनी ही शीघ्र स्थापित होगी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपसंहार

स्याद्वाद सुख, शान्ति और सामंजस्य का प्रतीक है। विचार के क्षेत्र में अनेकान्त, वाणी से क्षेत्र के स्याद्वाद और आचरण के क्षेत्र में अहिंसा, यह सब भिन्न-भिन्न दृष्टियों को लेकर एक रूप ही है। अर्थक्रिया न नित्यवाद में बनती है, न अनित्यवाद में, अतः दोनों वाद परस्पर विध्वंसक है। स्याद्वाद एक समुद्र है जिसमें सारे वाद विलीन हो जाते हैं।

अतः स्याद्वाद मानव के लिये, आत्म-कल्याण का अमोघ साधन है। उससे ज्ञान का विस्तार होता है और श्रद्धा निर्मल बनती है। आज जब कि सम्पूर्ण विश्व बारूद के ढेर पर बैठा है और एटमबमों के जोर पर दम्भ कर रहा है, तब इस प्रकार अनेकान्तात्मक विचारों के अनुशीलन से अन्धविश्वास, साम्प्रदायिक संकीर्णता और असहिष्णुता आदि कुप्रवृत्तियाँ नष्ट हो सकती हैं और मानव लोक-कल्याणवादी हो सकता है। आचरण को शुद्ध कर स्याद्वादरूप वाणी द्वारा सत्य की प्रस्थापना कर, अनेकान्तरूप वस्तु-तत्त्व को प्राप्त कर मानव आत्मसाक्षात्कार कर सकता है और अनन्त चतुष्टय एवं सिद्धत्व की प्राप्ति कर सकता है।

□

समावयंता वयणाभिघाया, कण्णंगया दुम्मणियं जणन्ति।
धम्मोत्ति किच्चा परमग्ग सूरे, जिइन्दिए जो सहइ स पुज्जो॥

—दशवैकालिक ९।३।८

जिनके सुनने मात्र से मन में क्रोध उमड़ पड़ता है, ऐसे वचनाभिघातों—कटु शब्दों को जो 'क्षमा करना धर्म है' यह मानकर सह जाता है, वह उत्कृष्ट वीर जितेन्द्रिय साधक वस्तुतः पूज्य है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org